शोध संकलन
ISBN: 978-93-93166-97-5

भाषा अधिग्रहण

For verification of this chapter, please visit on
http://www.socialresearchfoundation.com/books.php#8

डॉ. भुपेन्द्र कौर
सहायक प्राध्यापक
शिक्षाशास्त्र विभाग
आईएफटीएम विश्वविद्यालय,
मुरादाबाद, यू0पी0, भारत

DOI:10.5281/zenodo.11178800 **Chapter ID: 18858**
This is an open-access book section/chapter distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International, which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

साराँश

भाषा का मुख्य कार्य व्यक्ति के भावो और विचारों को एक दूसरे को आदान प्रदान करना है। भाषा का आधार शब्द है उन्ही के द्वारा विचारों को प्रकट किया जाता है। भाषा मनुष्य को समाज में रहने योग्य बनाती है भाषा के अर्जन को मानव व्यवहार और मानवीय विकास का प्रमुख आधार माना गया है। सीखने तथा सिखाने के लिए सामान्य दो शब्दों का प्रयोग किया जाता है-'उपार्जन' और 'अधिगम'। भाषा अर्जन का सम्बन्ध उस प्रक्रिया से है जिसमें भाषा को स्वाभाविक तथा अधिकांशः स्वतः भाषीय उद्भासन की प्रक्रिया द्वारा उपार्जित किया जाता है। भाषा अधिवास में भाषा शिक्षण की औपचारिक प्रक्रिया द्वारा इस उद्भासन को गठित एवं उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया जाता है। ज्ञान-विज्ञान

ISBN: 978-93-93166-97-5

तथा शिक्षा का अस्तित्व एवं प्रगति भाषा पर निर्भर है। कहने का तात्पर्य है कि मानव तथा समाज के सर्वागीण विकास में भाषा का महत्त्व ही व्याप्त है। वेदों में इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है।ऋग्वेद में भाषा-प्रयोग की शुद्धता को विशेष महत्व देते हुए कहा गया है कि-

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो

यत्र धीरा मानसा वाचन क्रत।

अत्रासखायः सख्यानि जानते

भद्रैषां लक्ष्मी निहिताधि वाचि।।"

भाषा का गहन अध्ययन मानव अनुभूतियों तथा क्रियाओं से है। यह राष्ट्र, धर्म तथा आत्मा की भावना से सम्बन्धित होती है। इसका प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति कार्य, पूजा, खेल में करता है। मानव का अस्तित्व भाषा के साथ इस प्रकार सम्बन्धित है कि एक के अभाव में दूसरे का स्वरूप ही स्पस्ट नही है। अतः कहा जा सकता है कि भाषा मानव जीवन के लिए वरदान है।

मुख्य शब्द- उपार्जन, अधिगम, उद्भासन, अनुभूतियों, विलक्षण।

प्रस्तावना

शिशु में जन्म से ही भाषा की व्याकरणिक कोटियों एवं सम्बन्धी ज्ञान विद्यमान रहता है। पर्यावरणात्मक उपागम के अनुसार शिशु इस जगत में मूल पदार्थ के रूप में जन्म लेता है। उनमें जन्मजात शक्तियाँ नही होती। पर्यावरण व अनुभवों के आधार पर उनमें भाषायी कौशल एवं अन्य व्यक्तिव शक्तियों को विकसित किया जाता है। भाषा एक

ISBN: 978-93-93166-97-5

कला है। प्रत्येक समाज में मानव शिशु में भाषाई क्षमता जन्म से ही विद्यमान होती है प्रथवी के अन्य प्राणीयों में यह विलक्षण क्षमता नही होती। केवल मानव शिशु ही बबलाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति से युक्त होता है। भाषा की इस सार्वभौमिक शक्ति का विकास भाषाई समुदायों में विभिन्न रूपों में होता है। यही कारण है कि भाषा को मानवीय कार्य व्यापार माना जाता है। मानव जीवन में भाषा एक ऐसी शक्ति या माध्यम है जिसके द्वारा हम लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित करके विचारों एवं भावों का आदान प्रदान करते है।

भाषा उपार्जक के स्वरूप

शिशु के भाषायी उपार्जन क्रम में उपार्जन का स्वरूप क्या है? उपार्जन प्रक्रिया में एकरूपता दृष्टिगत होती है अथवा विविधता, इस सम्बन्ध में निम्न दृष्टिकोणों से विचार किया जाता है-

(1) एकरूपता का सिद्धान्त- भाषायी विकास के क्रम-निर्धारण में जन्मजात ज्ञान के समर्थकों की मान्यता है कि प्रत्येक भाषा की सार्वभौमिक कोटियों एवं सम्बन्धों के अन्तर्जात के ज्ञान के आधार पर अपनी मातृभाषा के व्याकरिणक नियमों के गठन की क्षमता रखता है। एकरूपता के सिद्धान्त के अनुसार भाषायी उपार्जन में जन्मजात तत्वों के अधिगम के फलस्वरूप बालक की सामान्य संज्ञानात्मक शक्तियों और पर्यावरण का महत्व अपेक्षाकृत कम रहता है। अतः भाषा उपार्जन के क्रम में तथा उद्दिष्ट सामान्य उपलिब्ध के स्तर में पर्यापत एकरूपता होनी चाहिए।

(2) विविधता का सिद्धान्त- भाषा में विविधता के सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया जाता है। भाषा उपार्जन में विविधता के कई कारण हो

ISBN: 978-93-93166-97-5

सकते है। बालक की सामान्य अधिगम योग्यता तथा पर्यावरण जन्म भिन्नता के आधार पर भाषायी विकास के सम्बन्ध में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। भाषा विकास में विविधता को निर्धारित करने वाले घटक अनेक हैं, जिसका निम्न विवेचन किया गया है।

भाषा विकास की विविध के कारक

बालक के उपार्जित भाषयी स्तर में विविधता के कई कारक हो सकते है । इनमें से मुख्य निम्नलिखित है-

(1) सामान्य संज्ञानात्मक शक्तियाँ- भाषा उपार्जन में भाषा के प्रयोग एवं व्यवहार की कुशलता का सम्बन्ध सामान्यतः संज्ञानात्मक शक्तियों; यथा-बुद्धि, स्मृति, चिंतन, अवधान आदि से जोडा जाता है। भाषा अधिगम सम्बन्धी विविध अनुसंधानों के द्वारा भाषायी विकास की त्वरित गति एवं भाषा अधिगम की योग्यता में सम्बन्ध प्रमाणित किया गया है। बालक के भाषायी विकास की गति में पर्याप्त विविधता पाई जाती है, इस विविधता एवं भिन्नता का कारण संज्ञानात्मक शक्तियों के विकास से सम्बन्धित भिन्नत है।

(2) र्पयावरण विविधता- भाषा उपार्जन में निकटवर्ती पर्यावरण की विशेष भूमिका है। पर्यावरण की उत्कृष्टता भाषायी विकास की उत्कृष्टता का द्योतक माना जाता है। भाषा उपार्जन की गति का अध्ययन सामान्यतः सामाजिक स्तर के सन्दर्भ में किया जाता है। वैसे भाषा विकास सामाजिक स्तर का समानुपातिक परिणात है। समाजशास्त्रियों के मत में बालकों में केवल भाषायी प्रयोगों की भिन्नता है, भाषा व्यवहार सन्दर्भों के सम्बन्ध में भी उनकी विशेष गति नहीं होती। निष्कर्ष यह है कि बालक जिस प्रकार भाषा का प्रयोग

ISBN: 978-93-93166-97-5

करना सीखता है उस पर पर्यावरण का पर्याप्त प्रभाव पडता है।

(3) व्यक्तिगत भिन्नताएँ- भाषायी उपार्जन के क्रम में व्यक्तिगत भिन्नताएँ दृष्टिगत होती है। भाषा का उपार्जन मानव शिशु विशिष्ट व्यक्तित्व से संयुक्त प्राणी है। अतः भाषा विकास में व्यक्तिगत भिन्नता का होना स्वाभाविक है। भाषायी विकासगत भिन्नता का अध्ययन मुख्यतः ध्वनि तथा व्याकरणिक व्यवस्था से सम्बन्धित विकास के संदर्भ में किया गया है। अध्ययन के आधार पर ध्वनि की गति और समय में पर्याप्त भिन्नता पाई गई है, परन्तु ध्वनि कोटियों के अनुक्रम और विकास कालक्रम में पर्याप्त समानता दृष्टिगत हुई है।

संक्षेप में भाषा उपायर्जत में बालक के भाषायी नियन्त्रण तथा भाषा पर अधिकार में भिन्नताएँ दृष्टिगत होती है। वयस्क भाषायी प्रारूप के उपार्जन में भाषा उपार्जन के विविध रूप दृष्टिगत होते है। केवल कुछ पिछडे हुए लोग ही भाषा की आधारभूत व्याकरणिक व्यवस्था पर अधिकार प्राप्त करने में सक्षम नही हो पाते परन्तु इसका सम्बन्ध बुद्धि और सामाजिक स्तर से जोडना उचित नही है। भाषा के समुचित उपयोग की योग्यता में भी अन्तर पाया जाता है। यह अन्तर आयुगत, बुद्धिगत एवं व्यक्तिगत हो सकता है। बालक का भाषायी विकास सामान्यतः उसके अन्य प्रकार के विकासों का सहगामी होता है।

भाषा उपार्जन प्रक्रिया

बालक के भाषायी उपार्जन के विवेचन में उपार्जन प्रक्रिया एवं उनकी प्रकृति का मुख्य स्थान है। इसके आधार पर ही अध्येता बालक प्रतिक्रियाओं तथा भाषा उपार्जन में सहायक विविध कारकों की प्रकृति से अवगत होना सम्भव हो सकता है।

ISBN: 978-93-93166-97-5

भाषा उपार्जन की प्रक्रिया से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्यों का विवेचन इस प्रकार से किया गया है।

1. बालक की क्षमताएँ एवं उसकी प्रमुख युक्तियाँ,

2. उपार्जन प्रक्रिया की प्रकृति,

3. पर्यावरण की भूमिका।

बालक की भाषा का विकास उसके व्यक्तित्व का मुख्य निर्धारक है परन्तु इसे बालक के समग्र विकास से भिन्न, एकांगी तथा एकाकी विकास नही माना जा सकता। भाषा विकास अन्य विकासों से सम्बद्ध प्रक्रिया है।

बालक की क्षमताएँ एवं उसकी प्रमुख युक्तियाँ-भाषा उपार्जन मानव शिशु की अभूतपूर्व विशेषता है। इसमें उसकी अपनी क्षमताएँ तथा उसके द्वारा प्रयुक्त युक्तियों का विशेष महत्व हैं बालक के भाषायी विकास में भाषा वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों ने अनेक मानसिक शक्तियों तथा योग्यताओं के अस्तित्व को स्वीकार किया है। भाषा उपार्जन के क्रम में बालक द्वारा प्रयुक्त युक्तियों के विवेचन में इन शक्तियों तथा योग्यताओं का महत्वपूर्ण योगदान है। जो निम्न प्रकार से है-उत्प्रेरण, प्रत्यक्षात्मक एवं संाानात्मक विकास, उपार्जन युक्तियाँ मुख्य है।

i. उत्प्रेरण- शिशु द्वारा कुछ ध्वनियों का सहज उचचारण तथा क्रमशः भाषायी प्रयोगों पर अधिकार वस्तुतः सम्प्रेषण की आवश्यकता के अदभुत है। भाषा उपार्जन में उत्प्रेरक का एक स्त्रोंत बौद्धिक क्रीडाजन्य आनन्द अथवा सन्तोष है। भाषा विकास में उत्प्रेरक का दूसरा स्त्रोत

ISBN: 978-93-93166-97-5

बालक में चर्तुिवक परिवेश में प्रत्यक्षीकरण एवं उसकें संज्ञानात्मक परिचय की विकासशील प्रवृत्ति है। उत्प्रेरक का एक मुख्य स्त्रोंत परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने की सामाजिक प्रवृत्ति भी है।

ii. प्रत्यक्षात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास- भाषा उपार्जन प्रत्यक्षात्मक योग्यता एवं संज्ञानात्मक शक्तियों के विकास से सम्बन्धित हैं।

iii. उपार्जन युक्तियाँ- भाषा के व्यस्क प्रारूप के उपार्जन में बालक अनेक युक्तियों का स्वतः प्रयोग करता है। कुछ अन्तर्मूत युक्तियाँ भाषायी विकास में प्रमुख रूप से सहायक है जो निम्न प्रकार से है-

1. सन्दर्भगत अधिगम- भाषा का प्रयोग विशिष्ट स्थितियों एवं सन्दर्भो में होता है। बालक इन सन्दर्भो में होता है। उसकी भाषायी प्रतिक्रियाएँ इन्ही सन्दर्भो से जुडी होती है। ये स्थितियाँ एवं सन्दर्भ उद्दीपन के रूप में काम करते है। वह इनके प्रत्यक्षीकरण में सम्बद्ध सार्थक पक्षों को समझने एवं उनके प्रति भाषायी प्रतिक्रिया करने में समर्थ होता है। फलस्वरूप निरन्तर किसी सन्दर्भ में ही भाषा का प्रयोग करना सीखता है। यह उसके तथा भाषायी विकास का केन्द्रीय तत्व है।

2. अनुकरण- भाषा उपार्जन में सामान्यतः अनुकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। अनुकरण की जन्मजात प्रवृत्ति के फलस्वरूप बालक निकटवर्ती परिवेश में प्रयुक्त भाषा को सीखता है। इस सिद्धान्त के अनुसार भाषा उपार्जन में दो संकल्पनाएँ काम करती है।

(1) बालक जब नवीन व्याकरणिक रूपों में से उदभाषित होता है, तो उनका अनायास अनुकरण करता है।

(2) इन नवीन रूपों के सहज अभ्यास द्वारा वह उनको अपने व्यवहार

ISBN: 978-93-93166-97-5

में प्रतिष्ठित कर लेता है।

अनुकरण वस्तुतः सामाजिक सम्पर्क सापेक्ष प्रक्रिया है। बालक व्यस्कों ,ारा किए गए भाषायी नमूनों का करता है, परन्तु उसका भाषायी प्रयेग स्वगठित व्याकरणिक नियमों से नियन्त्रित रहता है। अतः अनुकरण को भाषा विकास में सहायक सामान्य जन्मजात प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

3. उपार्जन प्रक्रिया में सरलता एवं जटिलता- भाषा उपार्जन में शब्दों को सन्दर्भों से क्रिया के साथ अमूर्तीकरण एवं सामान्यीकरण की प्रक्रियाएँ भी समाहित रहती है। शब्दों को सन्दर्र्भो से जोडने की प्रक्रिया के साथ ही भाषा प्रयोग के नियमों की जानकारी उसके अन्वेषण एवं नियम निर्धारण की प्रक्रिया स्वतः गतिशील रहती है। भाषा के द्वारा व्यक्त आर्थी संकल्पनाएँ एवं वाक्ययीय संरचनाओं की जटिलता तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध भाषा विकास के महत्वपूर्ण निर्धारक है। एक और वस्तुओं तथा पदार्थे के नामों को वह रटकर सरलता से याद कर लेता है तो दूसरी ओर उनके प्रयोगगत विशिष्टताओं की जटिलताओं से भी उसे अवगत होना पडता है।

4. संज्ञानात्मक बाध्यता- भाषा उपार्जन में बालक सहज रूप से इस प्रकार की युक्तियों का प्रयोग करता है। जिसके फलस्वरूप उपार्जन प्रक्रिया में संज्ञानात्मक एवं स्मृत्यात्मक तनाव अपेक्षाकृत कम हो जाता हैं। भाषा उपार्जन में बालक की सबसें बडी विलक्षणता यह है कि वह भाषा का के प्रयेग में स्थिरता एवं जडता को प्रश्रय नही देता। भाषायी अभ्यास एवं योग्यताओं के विकास के साथ वह भाषा के जटिलतम रूपों के व्यवहार की कुशलता भी अर्जित कर लेता है और

ISBN: 978-93-93166-97-5

भाषा के मिलते-जुलते भाषायी प्रयोगों के व्यवहार का प्रयत्न करता है। उसका मुख्य उद्देश्य सम्प्रेषण है। अतः भाषा व्यवहार में प्रारम्भिक त्रुटियाँ भाषायी विकास तथा सम्प्रेषण में बाधक नही बनती।

5. अभ्यास- भाषा उपार्जन में अभ्यास की महत्वपूर्ण भूमिका है। परिवार में माता-पिता तथा अन्य सदस्यों के बीच शिशु भाषीय प्रयोगों को सहज रूप से दोहराने की प्रक्रिया में संलग्न रहता है। इससे भाषीय रूपों में के अभ्यास में विशेषकर ध्वन्यात्मक कुशलता के विकास में सहायता मिलती है।

6. बारम्बारता एवं संक्षिप्तता- भाषा उपार्जन में भाषायी प्रयोगों की बारम्बारता की प्रक्रिया के विकास में सहायक है। जिन प्रयोगों की आवृत्ति निरन्तर होती रहती है, उन प्रयोगों से बालक इस सीमा तक परिचित हो जाता है कि वह सहज रूप से भाषायी व्यवहार में प्रयुक्त होते है। उसमें भाषायी नियमों के आत्मीकरण, शब्दों के सन्दर्भगत अर्थ आदि के उपार्जन में प्रयोगों की बारम्बारता मूल रूप से विद्यमान रहती है।

भाषायी प्रयोग में छोटे और सरल प्रयोग जल्दी सीख जाते है। लम्बे प्रयोगों को सीखने में कुछ समय लगता है। भाषा उपार्जन के क्रम में शिशु छोटे एवं प्रचलित प्रयोगों को पहले सीखता है। वस्तुओं एवं पदार्थो के नामों को सीखने में इसी क्रम में संकेत मिलता है। इस प्रकार भाषा उपार्जन में बारम्बारता एवं संक्षिप्तता में आन्तरिक सम्बन्ध है।

उपार्जन प्रक्रिया की प्रकृति-भाषा उपार्जन की प्रक्रिया स्वतः एक जटिल प्रक्रिया है। जटिलता का प्रमुख कारण एक ओर भाषायी प्रक्रिया की जटिलता है तो दूसरी ओर उपार्जन प्रक्रिया की जटिलता, फिर भी भाषा

ISBN: 978-93-93166-97-5

उपार्जन में प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है-प्रत्यक्षात्मक प्रमुखता, रूपातमक जटिलता, आर्थी जटिलता, भाषायी प्रारूप, भाषायी प्रयोगों का विस्तार, पुनर्बलन।

(3.) पर्यावरण की भूमिका- बालक के भाषायी उपार्जन में पर्यावरण प्रमुख प्रभावी घटक है। वस्तुतः भाषा उपार्जन और भाषा अधिगम का प्रमुख अन्तर पर्यावरण और उसकी से सम्बद्ध हैं। इस सम्बन्ध में निम्न तथ्य उल्लेखनीय है-

भाषायी उद्भासन- भाषा उपार्जन के लिए भाषायी उद्भासन अत्यन्त आवश्यक है। भाषायी उद्भासन से तात्पर्य है भाषा विशेष का सहज परिवेश और उस परिवेश के प्रति बालक की संचेतना। समाज में जन्म लेने के नाते मानव का शिशु भी सामाजिक प्राणी होता है, चतुर्दिक उपलब्ध भाषायी परिवेश के बीच वह विकसित होता है। बालक और भाषायी परिवेश के बीच घटित अन्त क्रिया के फलस्वरूप वह भाषा संप्राप्ति के समर्थ होता जाता हैं।

भाषायी उपार्जन के स्तर-बालक के भाषायी विकास का अध्ययन भाषा की विविध व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में किया जा सकता है, जैसे-ध्वनि, शब्द, अर्थ और व्याकरणिक व्यवस्था।

1. ध्वनि विकास- बालक मातृभाषा में ध्वनियों को किस प्रकार उपस्थित करता है? यह प्रश्न आज भी चिन्ता का विषय बना हुआ हैं। भाषायी ध्वनियों के उपार्जन की पृष्ठभूमि के रूप में आवश्यक है कि बालक अपने परिवेश में वाक् ध्वनियों तथा अन्य प्रकार की ध्वनियों को पहचानना सीखे। मानव शिशु प्रारम्भिक स्तर पर वाक् ध्वनियों तथा अन्य प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करता है। बालक के ध्वनि विकास में

ISBN: 978-93-93166-97-5

कई स्तर जैसे-(क) रोना, (ख) बबलाना, (ग) ध्वनि, (घ) बोलना।

2. शब्द विकास- बालक के भाषायी में शब्द-प्रयोग की कुशलता का विशेष महत्व है। बालक द्वारा उच्चरित एकाक्षरी शब्द जैसे-माँ, पा, दा भी सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से शब्द ही है। जो व्यक्ति अथवा वस्तु से सम्बद्ध होकर निश्चित रूप ग्रहण करते है। भाषायी विकास के क्रम में बालक शब्दों रूपों पर क्रमशः अधिकार प्राप्त करता है। मातृभाषा उपार्जन का एक महत्वपूर्ण एवं सोद्देश्य पक्ष बच्चों को पदार्थो तथा वस्तुओं के नामों से परिचित कराना है। ब्राउन ने वस्तुओं के नामकरण की प्रक्रिया के आधार पर दो नियमों की ओर संकेत किया हैं-1. संक्षिप्तता का नियम और 2. बारम्बारता का नियम।

3. अर्थ विकास- भाषा को मानवीय सम्प्रेषण का एकमात्र समर्थ साधन माना जाता है। शिशु के रूदन की प्रक्रिया को भाषायी विकास का प्रथम स्तर मानने के मूल में सम्प्रेषण तथा अर्थाभिव्यक्ति की संकल्पना ही विद्यमान रहती है। शब्दो के अर्थग्रहण की प्रक्रिया बालक के लिए एक जटिल प्रक्रिया है। वह जिन शब्दो को सुनता है वे शब्द उसके लिए नवीन होते है। भाषायी विकास में प्रारम्भिक स्तर पर (पाँच-छः महीने की आयु में) जब शब्दों को समझने की योग्यता पर्याप्त रूप से विकसित नही होती, बालक दूसरों के हावभावों के प्रति प्रतिक्रिया करने लगता है। बालक जैसे ही किसी शब्द को अर्थ प्रदान करता हैं, वह तुरन्त उसका प्रयोग करने लगता है। परन्तु बालक द्वारा प्रदत्त अर्थ में भिन्नता होती हैं ये भिन्नताएँ जिन्हे अर्थगत त्रुटियाँ भी कहा जाता है,

4. व्याकरणिक विकास- बालक का वास्तविक भाषायी विकास लगभग

ISBN: 978-93-93166-97-5

डेढ वर्ष की आयु से प्रारम्भ होता है। इस समय तक वह भाषायी साँचों का प्रयोग करने लगता है। डेढ-दो वर्ष की आयु के बाद भाषा का प्रतीकात्मक क्रिया के रूप में व्यवहार करने लगता है। बालक प्रारम्भ में एक शब्द या पद का प्रयोग करता है। डेढ वर्ष की आयु में यद्यपि बालक का शब्द भण्डार सीमित होता है परन्तु वह भाषायी उद्बोधन के प्रति प्रतिक्रिया करता है। दो वर्ष की आयु में न केवल उसका शब्द भण्डार तीव्र गति से विकसित होता है बल्कि वह द्विपदीय वाक्यों का भी प्रयोग करने लगता है। इस स्तर पर बालक की भाषा मुख्यतः 'टेलीग्राफिक' होती है। उसके प्रारम्भिक वाक्यों में कुछ शब्द अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त होते है। इन्हे मुख्यतः कोशीय शब्द कहा जा सकता हैं। तीन से लेकर साढे तीन वर्ष तक की आयु में बालक जटिल वाक्य संरचनाओं को सीखना प्रारम्भ करता है। इस अवधि में बालक भाषा की सृजनात्मक शक्ति से भली-भाँति परिचित हो जाता हैं और उसका प्रयोग करने लगता हैं। चार साढे चार वर्ष की अवस्था में बालक भाषा की अन्य व्याकरणिक व्यवस्थाओं पर भी पर्याप्त अधिकार पा लेता है। वह सर्वनामों तथा सहायक क्रियाओं का भी प्रयोग लगता है। इसी प्रकार वह कर्मवाच्य का प्रयोग भी करने लगता है। यह कुशलता लगभग नौ-दस वर्ष की आयु में पूर्णतय विकसित होती है, परन्तु इसका प्रारम्भ भाषा विकास के इस काल से ही माना जा सकता है।

भाषा उपार्जन और संज्ञानात्मक विकास- पूर्व प्राथमिक स्तर पर गणितीय आकृतियाँ, आकार, गिनती, आयतन, अंक, समय आदि सम्बोधों का विकास प्रारम्भ हो जाता है। मानव के दैनिक जीवन में गणन-शास्त्र का बहुत उपयोग निहित है। संख्याओं का प्रयोग मूर्त

ISBN: 978-93-93166-97-5

तथा अमूर्त दोनों रूपों में किया जाता है। गणन की सूक्ष्मता के विषय में मनुष्य के मन को जाग्रत करना, मनुष्य के विकास का एक लक्षण माना जाता है। बालक शैशवावस्था में ही वर्यावरण के द्वारा संक्ष्याओं के नाम तथा कुछ परिणामों की सूचना पाकर उनसे परिचित हो जाते है । फिर भी बहुत सारे बालको को गणित विषय प्रारम्भ में बडा कठिन प्रतीत होता है। जीवन की यर्थाथता जानने की इस प्रवृत्ति के विकास में गणित का अध्ययन सहायक होता है क्योंकि गणित की सारी प्रक्रियाएँ निश्चित रूप में रहती है। इस विषय के अध्ययन में यदि यथा समय उचित विधि से सहायता मिलती है तो गणित का अध्ययन बालक के लिए सरल हो जाता है। कठिनाई को दूर करने तथा विषय को रोचक एवं सरल बनाने के लिए संज्ञानात्मक ज्ञान को पाँच भागों में बाँट सकते है।

1. मूलांक परिचय- ये अंक एक से नौ तक होते है र्काठ (कट-आउट) बनाकर मूल अंको का प्रत्येक परिमाण रूप में देकर संख्या के नाम का उसके साथ साहचर्य स्थापित कराया जा सकता है। मूलांक परिचय हेतु 'अंकसीढी' नामक साधन का प्रयोग करके बालक अेको के नाम, परिमाण तथा उनके परस्पर सम्बध्ध की जानकारी प्राप्त का सकता है। इसके साथ-साथ गणित की मूलभूत क्रियाओं के सम्बन्ध में भी प्रत्ष्क्ष रूप में जानकारी का अभ्यास कर लेता है।

2. दशमान परिचय- गणन का आरम्भ भी एक निश्चित परिमाण में होता है, यही परिमाण दो अंकों के मध्य का अन्तर होता है, इसी मूल परिमाण को ईकाई कहते है। एक किलो, एक मीटर, एक रूपया, ये सब गणन की इकाइयाँ है। बालक को बडी-बडी संख्याएँ समझने में भी कठिनाई आती है। बडी संख्याओं में इकाइयाँ के अंकों का मूल्य भिन्न-

ISBN: 978-93-93166-97-5

भिन्न स्थान पर होने से बदलता है, यह उन्हें समझना आवश्यक है। 11 की संख्या में एक संख्या दो बार आती है। इस संख्या में बायी ओर के स्थान के एक का मूल्य 10 है, तो दाहिनी ओर क एक को एक इकाई कहते है तो बायी ओर के एक को एक दहाई कहते हैं। इस प्रकार गणन में इकाई को नौ संख्याओं के बाद दस के परिमाण में संख्याएँ गिनी जाती है। मॉन्टेसरी के गणित के प्रत्यक्ष साधनों द्वारा 'दशमान' परिचय में उन्हें सहायता मिलती है।

3. अंकगणित की मूलभूत क्रियाएँ- अंक सीढी के माध्यम से इकाइयों का जोडना, घटाना, गुणा, भाग का अभ्यास जब बालक करता है तो दशमान के परिमाणों से वह बडी-बडी संख्याओं के साथ ये मूलभूत क्रियाएँ करता है। ज्ञानेन्द्रियों के विकास के साधनों में बेलनाकार गुडडों के सब समूह दस-दस है। मूल रंग तीन ही है। सप्ताह के दिन, वर्ष महीनों की जानकारी भी दी जाती है। इस प्रकार दैनिक, मासिक, वार्षिक विविध घटनाओं से सम्बन्धित संख्षओं पर बल का ध्यान सहजता से आकर्षित करने का प्रयास किया जाता है-प्राथमिक स्तर पर बालकों को कम-ज्यादा, दूर-पास, ऊपर-नीचे, छोब-बडा आदि का ज्ञान भी वस्तुओं को प्रत्यक्ष रूप में दिखाकर दिया जाता है। इसी क्रम में (एक-अनेक सम्प्रत्यय हेतु) कंकड या बीज अथवा अन्य की दे ढेरियाँ बनायी जाती है। पहली में एक तथा दूसरी में बहुत-सी वस्तुएँ रखते है। इस प्रकार ज्यादा बताने के लिए पहली ढेरी में कम और दूसरी में ज्यादा वस्तुएँ रखते हैं, गिनती सीख जाने पर बालक इन्हें गिनकर एक-अनेक का अन्तर समझ सकते है। कम-ज्यादा का तुलनात्मक ज्ञान तरल पदार्थ द्वारा कराया जा सकता है। इसी प्रकार उपयुक्तत सभी बिन्दुओं को समझाने के लिए आस-पास में उपलब्ध वस्तुओं को एकत्रित कर,

ISBN: 978-93-93166-97-5

इनकी तुलना करायी जा सकती है। एक से 20 तक की गिनती का अभ्यास कराने के लिए अध्यापक कंकड, इमली के बीज, चने या मक्का के दाने, कोडियों आदि का प्रयोग कर सकते हैं। तत्पश्चात बाजचीत, बालगीत, अंक कार्ड, विभिन्न प्रकार की ढरियों के माध्यम के खेलों आदि के द्वारा गिनती खेल का अभ्यास करा सकते हैं।

4. आयतन का ज्ञान- अध्यापक द्वारा परिवेश में देखी जा सकने वाली वस्तुओं; यथा-प्याले, सकोरे, शीशियाँ, बोतलें आदि में पानी अथवा रेत भरकर बालकों को आयतन का सम्प्रत्यय बताया जा सकता हैं।

5. समय का ज्ञान- पूर्व-प्राथमिक स्तर पर बालकों को समय के ज्ञान के बारे में केवल सप्ताह के दिनों और महीनों के नाम तथा दिनचर्चा का सामान्य ज्ञान पर्याप्त है। इसके लिए दिनों और महीनों के नाम के कार्ड बनाकर खेल खिलाये जा सकते है तथा खिलौना घडी की सुइयों को आगे-पीछे करके समय का अभ्यास भी कराया जा सकता है।

भाषीय विकास का स्तर-भाषीय विकास के तीन स्तर होते है-

1. वाक् क्रिया पूर्व स्तर- बालक के भाषायी विकास को प्रारम्भिक कुछ महीनों में वाक् क्रियाओं रोने, किलकने तथा स्वतः निःसृत अस्पस्ट ध्वनियों का विशेष महत्व है। ये न केवल वाक् अवसरों की सुदृढता विकास एवं अभ्यास में सहायक है, बल्कि वे पुनर्बलित घ्वनियों की उपकरणात्मक तथा सम्प्रेषणात्मक प्रवृत्ति से भी बालक को परिचित कराती हैः यथा-रोना, भूख अथवा कष्ट से छुटकारा पाने का साधन बनता है।

बालक सबसे पहले अपने निकटवर्ती परिवेश से प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान वस्तुओं, पदार्थो तथा व्यक्तियों से परिचित होता है। आरम्भ में माता-

ISBN: 978-93-93166-97-5

पिता इन वस्तुओं को उसके समाने प्रस्तुत करते है, धीरे-धीरे वह उन्हें हाथ बढाकर पकडना सीखता है। घुटनों के बल चलना तथा खडे होकर चलना सीखने की प्रक्रिया में वह इन वस्तुओं के अधिकाधिक सम्पर्क में आता है। लगभग एक वर्ष की आयु में उसे निरन्तर व्यवहार में प्रयुक्तत सामान्य वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसे स्वंय अपने दैनिक क्रियाकलापों की भी सम्पूर्ण जानकारी हो जाती है। एक से डेढ वर्ष की आयु के इस विकास क्रम को कुछ विद्वानों में (पियाजे 1951-55) संवेदना गति पटल स्तर कहा हैं। उनके अनुसार बालक परिवेश के प्रति की गयी प्रतिक्रिया के माध्यम; यथा-छूना, पकडना, देखना जथा हिलना-डुलाना आदि से ज्ञान प्राप्त करता है।

2. संवेदनागति परक स्तर- भाषी विकास में इस स्तर पर शिशु निकटवर्ती परिवेश में संवेदनाओं के प्रति गामक क्रियाएँ करता है। इस संसार के विकास क्रम में बालक स्मृति के आधार पर घटनाओं अथवा क्रियाओं की पुनरावृत्ति करता है। पियाजे ने अपनी पुत्री के अनुकरणात्म्क व्यवहार के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि इस बालक में घटनाओं अथवा वस्तुओं की स्मृति के आधार पर द्योतित करने की क्षमता विकसित हो जाती है।

संवेदना गतिपरक स्तर के अन्तिम चरणें में सम्बद्ध विकास की तीन दिशाएँ भी स्पष्ट होती है। ये है-वस्तु स्थायित्व की सिद्धता, उपकरणें अथवा साधनों का अन्वेषण तथा प्रतीकात्मक खेल का आविर्भाव। वस्तु अथवा पदार्थ स्थायित्व से अभिप्राय उस कुशलता से है जिसमें बालक केवल वस्तुओं को पहचानता ही नही है, बल्कि यह भी अनुभव करता है कि पदार्थ आखों से ओझल होन पर भी अपने स्थान पर यथावत् बने रहते है। प्रतीकात्मक खेल एक प्रकार से अभिनयात्मक है। बालक एक

ISBN: 978-93-93166-97-5

लडकी को घोडा तान लेता है और तद्नुकूल व्यवहार का अभिन्य करता है। यह त्रिपक्षीय विकास क्रम इस बात पर निर्भर करता है कि बालक स्वयं उन वस्तुओं तथा घटनाओं को द्योतित करने में कितना समर्थ है । इसी स्तर पर बालक सामान्यतः प्रथम शब्द का प्रयोग करता है।

3. भाषायी बोधनस्तर- बालक विकास के क्रम में क्रमशः को समझने की कुशलता भाषा प्रयोग की कुशलता के पहले विकसित होती है। सामान्यः 8-10 महीने की आयु में प्रतीकात्मक आंशिक संकेतों अनुतान, शब्दों और पदबन्धों को समझने का प्रथम प्रमाण मिलता है। बालक को भाषीय विकास में यह महत्वपूर्ण काल माना जाता है। इस काल के भाषीय अनुभव ही आगे चलकर भाषा सम्बन्धी व्यक्तितगत भिन्नता को द्योतित करते है।

बालक विकास के क्रम में क्रमशः भाषा में प्रयुक्तत ध्वनि के अन्तर को पहचानना सीखता है परन्तु इन पर उसका पर्याप्त अधिकार 4-6 वर्ष की आयु में ही हो सकता है। वह सर्वप्रथ्ज्ञम केवल बडी इकाइयों; यथा- पदबंध एवं एकाकी शब्द का अन्तर ही पहचानना सीख्ता है। 2-3 वर्ष की आयु में वह अधिक तिलते-जुलते शब्दों के न्यूनतम ध्वन्यात्मक भिन्नता के आधार पर पहचानने लगता है। सरल एवं संक्षिप्त आदेशों तक निर्देशों को समझने की योग्यता भी प्रथम वर्ष के अन्त तक विकसित हो जाती है। इस प्रकार बालक में बोधन प्रक्रिया का विकास सुनिश्चित क्रम में होता है।

प्रारम्भिक बाल क्रियाएँ एवं भाषीय व्यवहार- बोधन की प्रारम्भिक कुशलता विकसित होने पर बालक भाषा का प्रयोग करना सीख जाता है । वह भाष का सक्रिय, समर्थक स्वैच्छिक प्रयोग प्रथम वर्ष के अन्त

ISBN: 978-93-93166-97-5

तक करने लगता है। इन प्रयोगों को वयस्कों के प्रयोगों से मिलता-जुलता प्रयोग माना जा सकता है। चूँकि बालक मौखिक भाषायी व्यवहार के उपराणात्मक प्रयोग से परिचित हो चुका होता है अतः उसकी मुख्य समस्या केवल समुचित परिस्थिति में वाक् अवयवों को क्रियाशील बनाने की होती है। वाक् प्रयोग की कुशलता का प्रारम्भ हो जाने पर इसका उत्तरोत्तर विकास होता रहता है।

बालक के प्रारम्भिक भाषायी व्यवहार में निष्पादन कुशलता की दृष्टि से स्तरों का विवरण निम्न है-

1. एकपदीय प्रयोग- बालक प्रारम्भ में एक शब्द का ही प्रयोग करता है। यह शब्द सामान्यतः संज्ञा शब्द होता है तथा निकटवर्ती वस्तुओं, पदार्थो, व्यक्तितयों, खिलौनों तथा खाने-पीने की चीजों के लिए प्रयुक्त होते है। बालक के ये एकपदीय प्रयोग अभिव्यक्तित की दृष्टि से सम्पूर्ण वाक्य का काम करते है। ये एकपदीय प्रयोग सामान्यतः विधेय का काम करते है। अपनी सीमित योग्यता के कारण बालक वाक्य के अन्य घटकों का प्रयोग नही कर पाता। अतः वयस्क श्रोता बालक द्वारा प्रयुक्त शब्दों को समझने के लिए सन्दर्भ विशेष में ही इन प्रयोगों को ग्रहण करता है। उआहरण के लिए-गेंद का प्रयोग केवल गेंद के लिए ही नही होता बल्कि अन्य वस्तुओं के लिए भी होता है जिनका आकार गोल है।

बालक के प्रारम्भिक भाषायी विकास सम्बन्धी अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि बालक जैसे-जैसे एक से अधिक शब्दों का प्रयोग करने लगता है, अति सामान्यीकरण की प्रवत्ति क्रमशः कम होती है। बालक वस्तुओं, उनके लिए प्रयुक्त शब्दो के सम्बन्ध तथा शब्द मात्र से

ISBN: 978-93-93166-97-5

पारस्परिक सम्बन्धें को अधिक गम्भीरता और सूक्ष्मता से पहचानने लगता है। यह परिवर्तन भाषायी विकास की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, विकास गति की तीव्रता का भी द्योतक है।

2. द्विपदीय प्रयोग- एकपदीय उच्चारणें की प्रयोग कुशलता के विकसित होने के कुछ महीने के बाद बालक इन एकाकी शब्दों को द्विपदीय प्रयोग के रूप में संयोजित करने लगता है। बहुधा द्विपदीय प्रयोगों से पूर्व बालक एकाकी शब्दों को श्रृंखलाबद्ध प्रयोग करता है। वस्तुतः बालक इस स्तर पर उन्ही शब्दों का क्रम से प्रयोग करता है जिनको वह द्विपदीय प्रयोगों मे सम्मिलित रूप से प्रयुक्त करना चाहता है। इन श्रृंखलाबद्ध प्रयोगों मे प्रत्येक शब्द का पृथक् अनुपात होता है तथा दो शब्दों के बीच विराम की स्थिति दृष्टिगत होती है यथा- माँ/दूध।

परन्तु कुछ समय पश्चात् वह द्विपदीय प्रयोगों में इन शब्दों का समुचित प्रयोग करने लगता है, यथा-माँ दूध। कहा जा सकता है कि एकाकी शब्दों का श्रृंखलाबद्ध प्रयोगों लम्बे उच्चारणें के आविर्भव का द्योतक है। द्विपदीय वाक्यों के प्रयोग की कुशलता अर्जित करने के क्रम में बालक अपनी मातृभाषा की संरचना और प्रकार्य दोनों का विस्तार करता है।

3. सरल वाक्य- द्विपदीय वाक्यों के प्रयोग की कुशलता अर्जित करने के क्रम में बालक सरल वाक्यों का प्रयोग करना सीखता है। वह देखता है कि वाक्यों में कुछ अंश समान है तथा कुछ भिन्न हैं। वह अपनी ओर से कुछ परिवर्तन करता हुआ अनेक वाक्यों को रचने की कुशलता प्राप्त कर लेता है। इस क्रम में वह अपना एक 'लधु व्याकरण' गठित कर लेता

ISBN: 978-93-93166-97-5

है अर्थात बालक द्वारा प्रयुक्त वाक्य उसके अपने व्याकरण से भाषा के स्वरचित नियमों से नियन्त्रित होते है। बालक के भाषाई व्यवहार का यह स्तर परवर्ती भाषाई व्यवहार का प्रमुख आधार बनता है। बालक के भाषाई व्यवहार में त्रुटियाँ होती है जो बडों द्वारा संशोधित होने पर क्रमशः कम होती जाती है। बालक के भाषाई प्रयोगों को सामान्यतः 'टेलीग्राफिक' माना जाता है अर्थात उसके प्रारम्भिक वाक्यों में कुछ शब्द अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त होते हैं। ये मुख्यतः कोशीय शब्द होते हैं। बालक इन सीमित शब्दों के द्वारा अधिक-से-अधिक अभिव्यक्त करता है। इस स्तर के अंत तक अर्थात तीन वर्ष की आयु तक बालक भाषा के व्याकरणिक तत्वों नर समुचित अधिकार पा लेता है।

4. जटिल वाक्य- तीन से लेकर साढे तीन वर्ष की आयु में बालक जटिल वाक्य-संरचनाओं का प्रयोग करना सीखता है। वह संयोजकों का भी प्रयोग करने लगता है तथा पद-बन्ध क्रमश जटिलतर होते जाते हैं। संयोजकों का प्रयोग सीख लेने पर वह लम्बे-लम्बे वाक्यों की रचना करने लगता है। इतना ही नही, उसमें विविध प्रकार के वाक्यों की रचतागत कुशलता भी विकसित हो जाती है। इस स्तर पर उसकी वाक्य-रचना वयस्क प्रयोक्ता के वाक्यों से मिलती-जुलती होती है। परन्तू वयस्कों की तुलना में उसके प्रयोगों में त्रुटियाँ अधिक होती हैं एवं वाक्य संरचनाओं के सीखने का क्रम भी अधूरा होता है कारण स्पस्ट है कि त्रुटियाँ वास्तविक अर्थ में त्रुटियाँ न होकर बालक द्वारा भाषा की नियमितताओं तथा अनियमितताओं को सीखने की सूचक हैं। अधूरापन बालक के सीखने के क्रम को द्योतित करता है।

लगभग साढे चार वर्ष की आयु में बालक भाषा की अन्य व्याकरणिक

ISBN: 978-93-93166-97-5

व्यवस्थाओं पर भी पर्याप्त अधिकार पा लेता है। वह वाक्य में सहायक क्रियाओं का भी प्रयोग करने लगता है। इसी प्रकार वह कर्म वाक्य के प्रयोग की भी कफशलता अर्जित कर लेता है। इस प्रकार बालक लगभग सात वर्ष की आयु तक भाषा की वाक्यीय संरचना पर समुचित अधिकार पा लेता है। 'शैलीगत' विविधता की दृष्टि से विकास की सम्भवनाएँ सदा वर्तमान रहती हैं।

मानवीय भाषा की प्रमुख विशेषता अमूर्तता एवं सृजनात्मकता है। भाषाई विकास के क्रम में बालक क्रमशः सूक्ष्म विचारों से सम्बद्ध संकल्पनाओं के प्रयोग की कुशलता विकसित कर लेता है। इतना ही नही, वह भाषा का स्वतन्त्र रूप से प्रयोग करने की भी कुशलता अर्जित कर लेता है। भाषा उसके विचारों तथा भावों की प्रभवी अभिव्यक्ति का साधन बनती है।

5. भाषा विकास में विभिन्नताएँ- बालक के भाषायी विकास में विकास-क्रम की दृष्टि से सम्मानता होती है। सभी बालक सामान्यतः भाषा की व्यवस्थाओं पर सुनिश्चित क्रम से अधिकार पाते है। परन्तु यह नही कहा जा सकता कि मातृभाषा में बालक के भाषाई विकास में समरूपता अथवा पूर्ण समानता होती है। चूँकि भाषाई विकास व्यक्ति-सापेक्ष प्रक्रिया है अतः बालक के भाषाई विकास में वैयक्तिक भिन्नताओं का होना स्वाभाविक है। बालक के प्रारम्भिक भाषाई विकास में परिवेश में परिवेश महत्वपूर्ण घटक है। परिवेशगत भिन्नता भाषाई विकास की गति को नियप्त्रित करती है। प्रारम्भिक भाषाई परिवेश की समृद्धता भाषा-विकास में सहायक है।

समाजिक-आर्थिक स्तर के अनुरूप पारिवारिक जीवन तथा भाषाई

ISBN: 978-93-93166-97-5

व्यवहार के विविध रूप दृष्टिगत होते है। यद्यपि बालक के भाषाई विकास की तीव्र गति का सम्बन्ध उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर से जोडा जाता है, परन्तु इस सम्बन्ध में अन्तिम रूप से कुछ नही कहा जा सकता सामाजिक-आर्थिक स्तर के कारण भाषा में गुणात्मक भिन्नता हो सकती है, मात्रात्मक भिन्नता (शब्द-भण्डार के आकार आदि) के अन्य विविध स्त्रोत हैं।

बालक के भाषाई विकास में वयस्को का अधिक सम्पर्क, उनके साथ भाषा-व्यवहार के अधिक अवसर को भी महत्व देता है। कुछ विद्वानों के अनुसार व्यस्कों के अधिक सम्पर्क में रहने वाले बालकों का भाषाई विकास उन बालको के भाषाई विकास से अधिक होता है जो केवल समव्यस्कों से ही अधिक बातचीत करते है। कारण स्पष्ट है कि भाषाई प्रारूपों अथवा नमूनों का अधिक महत्व है।

बालक के भाषाई विकास में मानसिक तथा संवेगात्मक घटकों का भी निश्चित महत्व है। यद्यपि सभी सामान्य बालकों में भाषाई सीखने की क्षमता होती है परन्तु तीव्र बुद्धि का बालक भाषा के प्रयोग में, भाषा सीखने में अधिक समर्थ होता है। परन्तु संवेगात्मक पक्ष की प्रबलता भाषाई विकास में समस्याओं का कारण बनती है। सामान्यतः मातृभाषा के प्रति रागात्मक लगाव भाषा सीखने में सहायक होता है। स्पष्ट है कि बालक के भाषाई विकास में व्यक्तिगत भिन्नताएँ दृष्टिगत होती है।

निष्कर्ष- भाषा अर्जन की प्रक्रिया एक प्रकार से स्वाभिविक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया विद्यालय प्रक्रिया से अलग है। इसमें शिशु अपने परिवार में बोले जाने वाली ध्वनि, शब्द को सुनकर प्रतिक्रिया करता हैं और

ISBN: 978-93-93166-97-5

उसी से भाषा प्रयोग करना सीख जाता है। भाषा-अर्जन में बालक अनुकरण, अभिव्यक्ति, अभ्यास, बारम्बारता एवं संक्षिप्तता युक्तियों का अवलंबन लेता हैं। शिशु में भाषायी विकास संकल्पना या प्रत्यय विकास का काफी महत्व है। शिशु पहले मूर्त संप्रत्यय ग्रहण करता हैं फिर धीरे-धीरे वह समय, काल, भाव आदि के अमूर्त संप्रत्ययों से परिचित होता जाता है। शव्दाबली के विकास के अन्र्तगत तीन वर्ष तक शिशु के शब्द भंडार में संज्ञाएँ अधिक मात्रा में होती हैं। वातावरण और प्रेरणा वस्तुओं के संपर्क जैसे तत्व शिशु के शब्दावली अर्जन में सहायक है।

संदर्भ सूची-

1. भाटिया, सुमन, बालक में भाषा का विकास, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा।

2. शास्त्री, सीताराम एवं शर्मा, वाशिनी, मनोभाषा विकास, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा।

3. माथुर, एस.एस., शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।

4. शर्मा, लक्ष्मी नारायण, भाषा 1, 2 की शिक्षण विधियाँ और पाठ नियोजन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

5. गुप्ता, मनोहर, भाषा-शिक्षण, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा।

6. चतुर्वेदी, स्नेहलता, पाठयक्रम में भाषा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।